सार को अपनाइए, थोथा छोड़ दीजिए

कबीर की सीख आज भी क्यों है सबसे बड़ी जीवन-दृष्टि

डॉ. मुकेश नायक

'साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय.
सार-सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय..'

संत कबीरदास का यह प्रसिद्ध दोहा केवल आध्यात्मिक संदेश नहीं, बल्कि जीवन प्रबंधन का कालजयी सूत्र है. इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह मनुष्य को यह सिखाता है कि जीवन में क्या अपनाना है और क्या छोड़ देना है. जिस प्रकार सूप अनाज को फटकते समय दानों को अपने पास रखता है और भूसी को हवा में उड़ा देता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी अपने जीवन में केवल सार्थक, उपयोगी और सकारात्मक बातों को स्थान देना चाहिए तथा निरर्थक, नकारात्मक और मन को विचलित करने वाली बातों को त्याग देना चाहिए.

आज का जीवन सूचनाओं, विचारों और प्रतिक्रियाओं से भरा हुआ है. हर दिन हम अनेक लोगों से मिलते हैं, उनकी राय सुनते हैं, प्रशंसा और आलोचना दोनों का सामना करते हैं. समस्या तब उत्पन्न होती है जब हम हर बात को अपने मन में स्थायी स्थान दे देते हैं. किसी की कटु टिप्पणी, असफलता का एक क्षण, किसी का अस्वीकार या उपेक्षा—ये सब हमारे आत्मविश्वास को प्रभावित करने लगते हैं. जबकि कबीर की सीख कहती है कि आलोचना में यदि सीख हो तो उसे अपनाइए, अन्यथा उसे वहीं छोड़ दीजिए.

जीवन में हर व्यक्ति की राय अंतिम सत्य नहीं होती. हर कोई आपके संघर्ष, परिस्थितियों और सपनों को नहीं जानता. इसलिए किसी की नकारात्मक सोच को अपनी क्षमता का प्रमाण मान लेना सबसे बड़ी भूल है. व्यक्ति की वास्तविक पहचान उसकी मेहनत, धैर्य, निरंतर प्रयास और आत्मविश्वास से बनती है, न कि दूसरों के निर्णय से.

सोशल मीडिया के दौर में यह शिक्षा और अधिक प्रासंगिक हो गई है. आज लोग दूसरों की उपलब्धियां, वैभव और सफलता देखकर अपने जीवन से असंतुष्ट होने लगते हैं. जबकि वास्तविकता यह है कि दुनिया को केवल सफलता दिखाई देती है, उसके पीछे का संघर्ष नहीं. इसलिए तुलना कभी प्रेरणा का स्रोत नहीं बनती, बल्कि अक्सर ईर्ष्या और हीनभावना को जन्म देती है. बेहतर यह है कि दूसरों की सफलता से प्रेरणा ली जाए, तुलना नहीं की जाए.

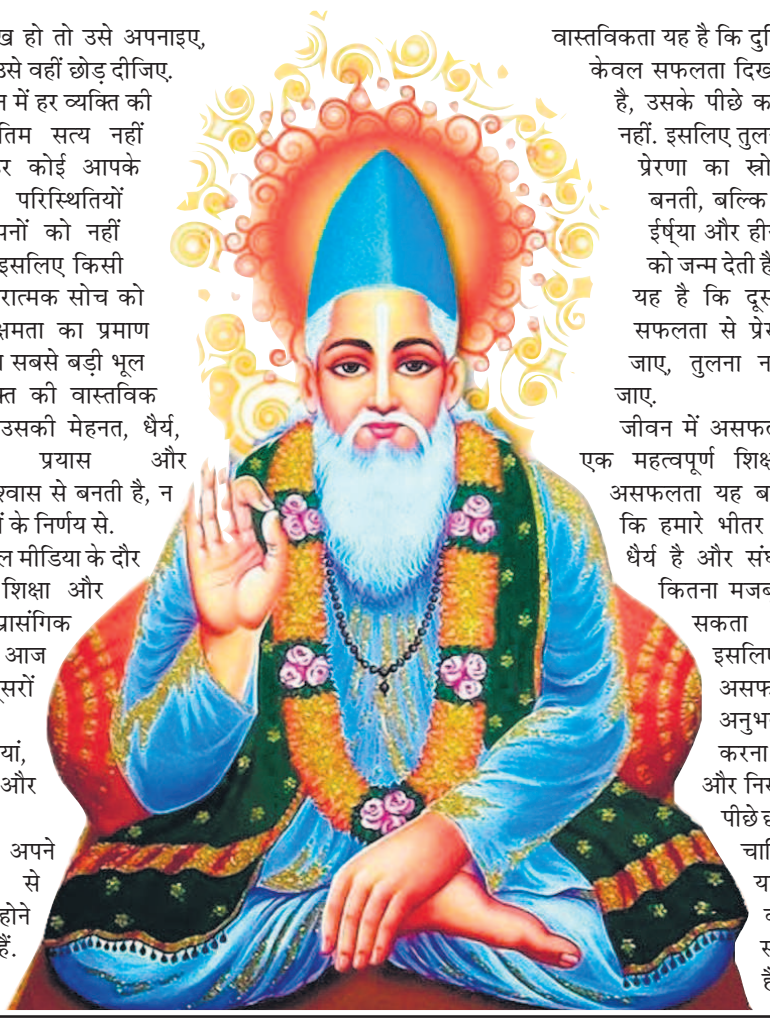

जीवन में असफलता भी एक महत्वपूर्ण शिक्षक है. असफलता यह बताती है कि हमारे भीतर कितना धैर्य है और संघर्ष हमें कितना मजबूत बना सकता है. इसलिए हर असफलता से अनुभव ग्रहण करना चाहिए और निराशा को पीछे छोड़ देना चाहिए. यही सूप का स्वभाव है अनुभव को रखना और निराशा को उड़ा देना.

इसी प्रकार सफलता मिलने पर भी विनम्रता बनाए रखना आवश्यक है. प्रशंसा से आत्मविश्वास बढ़ना चाहिए, अहंकार नहीं. आलोचना से सीख मिलनी चाहिए, अपमान का बोझ नहीं. रिश्तों के टूटने से जीवन समाप्त नहीं होता, बल्कि नई समझ और परिपक्वता जन्म लेती है. हर अनुभव व्यक्ति को या तो कमजोर बनाता है या मजबूत निर्णय स्वयं व्यक्ति के हाथ में होता है.

मानसिक शांति भी इसी विवेक से प्राप्त होती है. हम यह नियंत्रित नहीं कर सकते कि लोग हमारे बारे में क्या सोचेंगे या भविष्य में क्या होगा, लेकिन हम यह अवश्य तय कर सकते हैं कि परिस्थितियों पर हमारी प्रतिक्रिया कैसी होगी. जो व्यक्ति यह सीख जाता है कि किन बातों पर ध्यान देना है और किन्हें अनदेखा करना है, वही जीवन की अनेक परेशानियों से स्वयं को बचा लेता है. कबीरदास का संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना सदियों पहले था. जीवन में केवल ज्ञान पर्याप्त नहीं, बल्कि विवेक उससे भी अधिक आवश्यक है. विवेक ही हमें सिखाता है कि क्या अपने भीतर रखना है और क्या छोड़ देना है.

अंततः सफलता केवल इस बात से नहीं मापी जाती कि हमने कितना अर्जित किया, बल्कि इस बात से भी कि हमने जीवन की यात्रा में कितना अनावश्यक बोझ पीछे छोड़ दिया. इसलिए जीवन का मूल मंत्र यही होना चाहिए सार को पकड़िए, थोथे को छोड़िए, सीख को संभालिए, दर्द को जाने दीजिए और अपने विवेक के साथ आगे बढ़ते रहिए. यही कबीर की शिक्षा है और यही एक शांत, सफल तथा सार्थक जीवन का सबसे सुंदर मार्ग भी है.

क्लास by बड़े भाई

प्रेरणा लें लेकिन यह ध्यान रखें..

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, एक किस्सा सुनाता हूं. राम जी और समुद्र देवता का. आपने भी ज़रूर सुना होगा. भगवान राम को सागर पार कर लंका जाना होता है और भगवान, सागर से रास्ता देने का निवेदन करते हैं. जिससे वो और उनकी वानर सेना लंका पहुंच सकें. भगवान ने कई दिनों तक सागर की वंदना की लेकिन सागर देवता न तो प्रकट हुए न कोई रास्ता या उपाय बताया. एक समय बाद भगवान उठ खड़े होते हैं और सागर को क्षिप्त विक्षिप्त करने के उद्देश्य से तीर संधान लेते हैं. तब तुंरत भय से सागर देवता प्रकट हो उठते हैं और उनको मार्ग बताते हैं और भगवान और उनकी सेना राम सेतु निर्माण कर लंका पहुंचते हैं.

यह किस्सा हमें एक शानदार शिक्षा तो देता है कि हमें एक सीमा तक धैर्य रखना चाहिए लेकिन इसके आगे जो हमें ध्यान रखना है कि जो हमारी प्रतिक्रिया है वो यथोचित होनी चाहिए. वरना हम अपना ही नुकसान कर लेंगे. भगवान श्रीराम सक्षम थे और ऐसा करना आवश्यक हो गया था. हम क्या प्रतिक्रिया दें इसके लिए हम कितने सक्षम हैं यह ध्यान रखना पड़ेगा. हम उठ खड़े हों और कोई जल्दबाजी कर दें कि भगवान ने फिर ऐसा कर दिया था तो मुझे भी करना चाहिए. वो परिस्थिति दूसरी थी. आपकी परिस्थिति दूसरी है. कहने का तात्पर्य है कि हम प्रेरणा लें, सीखें लेकिन उस संदेश को सही ढंग से समझें और आपकी परिस्थिति के हिसाब से प्रतिक्रिया करें. आज बस यही कहना था..धन्यवाद. खैर जो मैने कथा सुनाई, उस पर दिनकर जी की चर्चित पंक्तियां पढ़ लीजिए, अच्छा लगेगा

अक्सर इस प्रसंग की चर्चा पर इस पंक्ति की चर्चा होती है.

तीन दिवस तक पंथ मांगते
रघुपति सिन्धु किनारे,
बैठे पढ़ते रहे छन्द
अनुनय के प्यारे-प्यारे.
उत्तर में जब एक नाद भी
उठा नहीं सागर से
उठी अधीर धधक पौरुष की
आग राम के शर से.

पुस्तक समीक्षा

शतरंज की बिसात और न्याय-पश्चाताप का स्टेलमेट

सुरेश उपाध्याय

एक खिलाड़ी को तैयार करने में खिलाड़ी के साथ उसके परिवार व प्रशिक्षक का त्याग व समर्पण दिखाई देता है लेकिन साथ ही खेल संगठनो में गुटबाजी, दाँव-पेंच, आंतरिक राजनीति व उसके छल-प्रपंच भी समाए होते हैं, जिससे हमारे खिलाड़ियों को दो-चार होना पड़ता है और इसमें कई बार उनकी प्रतिभा और ऊर्जा को सोख लिया जाता है. इस बात को वरिष्ठ साहित्यकार दीपक गिरकर ने अपने नए उपन्यास स्टेलमेट के जरिये बड़ी साफगोई, बारीकी और गंभीरता से एक्सपोज किया है. वहीं सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, खेल व आध्यात्मिक क्षेत्र की विसंगतियों व कुरुपताओ को भी शिद्दत से रेखांकित किया है.

न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली से प्रकाशित इस उपन्यास में दीपक गिरकर ने सरकारी शिक्षा व्यवस्था में संसाधनो का अभाव तथा हतोत्साहित करने की नीतियो से निजी संस्थाओ के लिए बढ़ते अवसर को भी बड़ी बारीकी से देखा है. उपन्यास में नई शिक्षा मंत्री की अपनी कोई नई दृष्टि या विजन नही है. एन जी ओ से अपेक्षा व संविदा नियुक्ति का ही फार्मूला दिखाई देता है. उपन्यास इन बातों को हमारे सामने लाता है कि राजनीति, शासन और प्रशासन का गठजोड़ किस तरह धर्म व अध्यात्म के नाम पर चल रहे मठाधीशों के कुकर्मों, अवैध व अनैतिक गतिविधियों को मदद करते हैं. न्यायालय में तारीख पर तारीख कैसे न्याय आकांक्षी को थका देते हैं. निर्दोष अपराधी सिद्ध हो जाते है तथा अपराधी यदि सजा पाते भी है तो जेल में उनको किस तरह सुविधाएं उपलब्ध हो जाती है. बार बार ऐसे अपराधियों को पैरोल कैसे मिल जाती है तथा पैरोल में भी कैसे उनकी व आश्रम की गतिविधियाँ सामान्य तरह से चलती रहती है. जैसे गंभीर व जरुरी सवाल उपन्यास के माध्यम से उठाए गए हैं. शायद इन्हीं कारणों से अपराधी को सजा मिलने पर भी प्रतिशोध की आग नही बुझती है तथा न्याय की अपेक्षा करने वाला प्रतिशोध में खुद अपराधी बन जाता है. एक खोजी पत्रकार धमकियों व चुनौतियों के बीच किस तरह न्याय निर्णय में मदद करता है, उसे भी रेखांकित किया गया है. इस तरह पूरा उपन्यास अपने तईं हमारे समाज और समय के तमाम मौजूदा सवालों को कठघरे में खड़ा करते हुए पाठक के सामने यक्ष प्रश्न रखता है कि हम किस तरह के समाज और दौर में जी रहे हैं. इसके पूर्व श्री गिरकर के दो उपन्यास अम्मा व %एक बैंक मैनेजर की डायरी के अतिरिक्त एक व्यंग्य संग्रह, प्रेरक आलेख संग्रह, बैंक एनपीए पर किताब चर्चा में रही है. लघुकथा विमर्श (आलोचना) के सम्पादन के साथ साहित्यिक शोध कार्य, समालोचना व समीक्षा के क्षेत्र में भी उनकी सक्रियता बनी हुई है. वे बैंक के उच्च अधिकारी रह चुके हैं और उनके इन सघन जीवनानुभवों की स्पष्ट छाप हमें उनके लेखन में दिखती है.

उपन्यास की मुख्य पात्र माधवी जेल की सजा काटते वक्त फ्लैशबैक में स्मृतियों को जीती है. सम्पन्न परिवार में बचपन, कालेज की शोख, चंचल, होनहार छात्रा का अपने सहपाठी से प्रेम, प्रेम विवाह में जातीय, आर्थिक असमानता, सामाजिक पृष्ठभूमि की दीवार, परिवार के अलगाव व समयोपरांत स्वीकृति से उपन्यास की शुरुआत होती है. बेटे कार्तिक के बाद मूक बधिर बेटी अनामिका के जन्म के साथ उत्पन्न हुई चुनौती को वह स्वीकारती है तथा शतरंज में उसका करियर बनाने की ठानती है. अपना केरियर छोडकर उसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर का खिलाड़ी बनाती है.

आध्यात्मिक गुरु ब्रह्मर्षि सुब्बाराव के प्रति झुकाव होता है तथा अपने सहपाठी राजनीतिज्ञ के आग्रह पर राजनीति में आती है और शिक्षा मंत्री बनती है. इस बीच पति श्रीनिवासन का जु?ाव अपनी सहकर्मी से होता है तथा शराब की आदत के साथ वापसी होती है. एक दिन बेटी का अपहरण, बलात्कार व हत्या की सूचना पुलिस से मिलती है और ब्रह्मर्षि सुब्बाराव का सेवक वेंकट रेड्डी अपराधी घोषित कर सजा पाता है.

बेटी के हाथ की मुट्ठी में सफेद बाल से सही अपराधी को लेकर उसे संदेह रहता है. इसी बीच खोजी पत्रकार लक्ष्मी अय्यर कैदी वेंकट रेड्डी से चर्चा के बाद खोजबीन करती है तथा ब्रह्मर्षि सुब्बाराव के अपराधी होने तथा उसे बचाने के षडयंत्रो का खुलासा करती है. ट्रायल फिर से शुरू होती है तथा ब्रह्मर्षि को आजीवन कैद की सजा तथा वेंकट रेड्डी को निर्दोष घोषित किया जाता है. बार बार पैरोल, जेल में सारी सुविधाओं तथा अनुयायियों में ब्रह्मर्षि सुब्बाराव के प्रति वही भाव माधवी को बेचैन करते हैं तथा पैरोल के दौर में वह ब्रह्मर्षि सुब्बाराव के दोनो हाथ काटकर दो वर्ष की सजा काट रही है. इस स्थिति में वह सोच रही है ङ्क क्या उसकी बेटी को न्याय मिला?, क्या सुब्बाराव को कोई पछतावा है? और इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि न तो सुब्बाराव हारा है और न वह जीती है तथा शतरंज के खेल की तरह स्टेलमेट की स्थिति निर्मित हुई है. उपन्यास की भाषा व लय ने कथासूत्र को इस तरह गूँथा है कि निर्बाध पढ़ने की आकांक्षा बनी रहती है. हिन्दी जगत के पाठक अपनी तरह के अनूठे इस उपन्यास को पसंद करेंगे, सराहेंगे.

उपन्यास - स्टेलमेट
लेखक - दीपक गिरकर
मूल्य - रु 299/-
प्रकाशक - न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

कविता

अनकही

सुचिता सकुनिया

पहले...
तुम्हारी देर से
मुझे शिकायत थी.

आज...
तुम्हारी थकान से
मोहब्बत हो गई है.

पहले जब तुम
दफ़्तर से देर से
लौटते थे,
मैं रूठ जाया
करती थी.

शिकायत बस इतनी
थी...
काश, तुम्हें भी
घर लौटने की
उतनी ही बेचैनी होती.

शायद वो मेरी नादानी
थी...
या उम्र का अल्हड़पन.

तुम्हारे चेहरे की
थकान,
लबों की फीकी
मुस्कान...

अब मुझसे छिपती
नहीं.

तुम्हें थककर सोते देख

अब शिकायत नहीं
होती...

बस दिल
दुआ करता है
कि तुम्हारी हर थकान
मुझ तक आ जाए.

जानती हूँ...

दिनभर जो तुम
दुनिया से लड़ते हो,
वो अपने लिए नहीं,
हमारे ख़्वाबों,
हमारी मुस्कानों
और हमारे आने वाले
कल के लिए लड़ते हो.

तुम्हारे घर लौटते ही
बिखरी हुई शाम
सिमट जाती है...
और यूँ लगता है
जैसे
सुकून ने भी
तुम्हारा हाथ थाम
रखा हो.

शायद...
तुम्हारे साथ ही
रहमतें भी
घर लौट आती हैं.

उन सभी पतियों के
नाम...

जिनकी मोहब्बत
शब्दों से कम,
ज़िम्मेदारियों से ज़्यादा
दिखाई देती है.

कहानी

मां का दिल

आसिम अनमोल

घर में बड़ी चहल पहल थी. हर चेहरा नजर आ रहा था. माँ नजर नहीं आ रही थी. बेटा परेशान नजरों से माँ को इधर उधर देख रहा था. बहन बोली भय्या किसे देख रहे हो. माँ दिखाई नहीं दे रही. अरे भाई जान माँ कैसे दिखाई देगी माँ किचन में कचौड़ी बना रहीं हैं. माँ को देखकर बेटा चिपटकर रोने लगा. कहने लगा माँ तुम नजरों के सामने रहा करो. घर में कभी खुशी कभी गम सा सन्नाटा छा गया. बहन भय्या को रोता हुआ देखकर कहने लगी देखो भय्या तुम ऐसे रोओगे तो हम तुमसे बात नहीं करेंगे. ठीक है नहीं रोएंगे. चलो अदरक वाली चाय बनाओ. बहुत सर्दी लग रही है. हम सब बैठकर पिएंगे.

माँ ने बेटे को सीने से लगाते हुए कहा. अब रोना नहीं अच्छे बेटे रोते नहीं. अच्छा सुनो इधर कई दिन से चक्कर आ रहे हैं. मुझे डॉक्टर को दिखा देना और बाजार जाना तो मेरे लिए एक गर्म शाल भी ले आना. बेटा बोला ठीक है डॉक्टर को दिखा दूंगा और शाल भी ले आऊंगा. माँ बीमार रहती थी. इस लिए उसको अपनी एक बेटी और तीन बेटों की बहुत जिक्र रहती थी. एक बेटे और एक बेटी की शादी ही हुई थी. अभी दो बेटे अविवाहित थे. माँ जिस बहू को घर में खुशी से लेकर आई थी. उसका अपना नजरिया अलग था. जिन्दगी जीने का अख्खड़ स्वभाव था उसका. बेटे को माँ से जितनी मोहब्बत थी बहू को माँ से उतनी ही घृणा थी. माँ के दिमाग पर ऐसे माहौल का गलत असर पड़ रहा था. बेटा माँ की मानसिक हालत समझ रहा था. बेटे की आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी. बेटे के मन में आया कि माँ को कहीं बाहर घुमाने ले जाएँ ताकि माँ की तबियत में कुछ सकारात्मक बदलाव आ जाए. माँ मय परिवार के साथ घूम फिरकर वापस उसी घर में आ गई. जहाँ माँ को चिंताएँ घेरे रहती थीं. लेकिन माँ के चेहरे पर एक चमक थी. बाहर के वातावरण ने माँ को थोड़ी राहत जरूर पहुँचाई थी. कुछ रोज गुजरने के बाद घर में फिर वही माहौल करवट लेने लगा. माँ के चेहरे पर एक अलग किस्म की बेचैनी नजर आने लगी.

कहानी ने यहाँ पर एक नया मोड़ लिया. इधर माँ थोड़ी खुशहाल ही हुई थी दोबारा फिर चिंताओं की माँ का ध्यान जाने लगा. माँ बीमारी से कुछ उभरी ही थी उधर बहू ने अपने पति को अलग मकान लेकर रहने के लिए उकसाना शुरू कर दिया. इधर माँ को जब यह बात पता चली तो माँ को गहरा सदमा पहुँचा और माँ पहले से ज्यादा बीमार रहने लगी. उधर शादी शुदा बेटी माँ की फिक्र में मायके और ससुराल के चक्कर काट रही थी. इधर माँ को अपने दो अविवाहित बेटों की भी चिंता रहती थी. संसार में माँ की मौजूदगी से ही संसार जिंदा रहता है. माँ बस तुम मेरे सामने हमेशा रहना और मुझे कुछ नहीं चाहिए. बेटा माँ से रुआंसा होकर यह बात कह ही रहा था कि दरवाजे की कॉल बेल बजती है. बेटा जाकर देखता है दरवाजे पर खाकी वर्दी में पुलिस खड़ी थी. बेटा देखकर पुलिस से पूछता है जी बताइए क्या बात है. किससे मिलना है आपको. पुलिस का एक जवान बोलता है कि यहाँ हिना नाम की कोई औरत रहती है. हिना उस घर की बहू होती है. इस लिए वो सकपका जाता है यह सुनकर. कहता है कि हाँ हिना रहती है यहाँ. मेरी बीवी है क्यों क्या हुआ ? पुलिस वाला बताता है इस नंबर से यह औरत लड़कों को कॉल करती है और इमोशनल ब्लैक मेल करती है और पूछताछ करने पर पता चला है कि हिना नाम की यह औरत शादी से पहले भी ऐसी हरकते करती थी. शौहर पुलिस वालों से उसकी तरफ से माफी मांगता है और एक मौका देने के लिए कहता है. पुलिस चेतावनी देकर चली जाती है. शौहर अपनी बीवी से कुछ नहीं कहता माँ की तबियत और न खराब हो जाए इस लिए चुप रहता है. लेकिन माँ को किसी तरह से यह बात पता चल जाती है. बेटा अंदर ही अंदर घुटता है.

रात में वो अपनी बीवी को खुदा का वास्ता देता है कि इस घर की इज्जत से न खेलो. बीवी उल्टा शौहर को धमकाने लगती है. इधर माँ रात में यह बातें सुन लेती है. उसके दिल को इतना सदमा पहुँचता है कि माँ का रात में ही हार्ट अटैक आ जाता है. सुबह होते ही जब बेटे की नजर माँ की मृत्यु शय्या पर पड़ती है तो उसकी जिन्दगी लुट चुकी होती है. पूरे घर में मातम सा छा जाता है. बेटा अपनी माँ को चिपटकर रो रहा था. बहनें भी सिसकियों से रो रही थीं. बेटे के घर से जन्नत जा चुकी थी. बेटे का माँ के जाने से बुरा हाल था. बेटे की आँखे रोते रोते सूज चुकी थीं और वो अपनी शादी वाले दिन को अंदर ही अंदर कोस रहा था और सोच रहा था कि मेरी माँ उस रोज कितना खुश थीं. जब वो कुँआरा था.

लघु कथा

दूसरा अभिमन्यु

सुभाष चंद्र लखेड़ा

उसके अध्यापकों का मानना था कि वह भविष्य का एक बड़ा साहित्य-कार है. उसकी कुछ कहानियाँ स्कूल की गृह पत्रिका स्पंदन में तब से छपनी शुरू हो गई थी जब वह सातवीं कक्षा में था. कक्षा बारह तक पहुंचते - पहंचते वह जिले और प्रदेश की पत्र - पत्रिकाओं में भी छपने लगा. परेशानी सिर्फ यह थी कि ऐसी सभी पत्र - पत्रिकाएं उसकी रचनाओं को छापती तो थी लेकिन बतौर मानदेय उसे इनसे कभी एक रूपया भी नहीं मिला. स्नातक की परीक्षा जैसे - तैसे पास करके वह एक निजी कंपनी में क्लर्क लगा तो कंपनी का मैनेजर उससे अपने घर के काम भी करवाने लगा.

खैर, उसने रात - रात भर जागकर दूसरा अभिमन्यु शीर्षक से एक उपन्यास लिखा जो भवन निर्माण में लगे उन मजदूरों की समस्याओं के ऊपर था जिनका अपना कोई स्थाई घर नहीं होता. बहरहाल, उपन्यास पूरा होने पर जब उसने प्रकाशकों के चक्कर लगाए तो उसे एक भी ऐसा प्रकाशक नहीं मिला जो उसकी मदद करता.

एक दिन झिझकते हुए उसने उस उपन्यास की पाण्डुलिपि अपने मैनेजर को दिखाई तो मैनेजर ने उससे वह पाण्डुलिपि एक हजार रुपये देकर खरीद ली. समय बीतता गया और यही कोई एक साल बाद उसे पता चला कि मैनेजर ने उस उपन्यास को अपने बेटे जयद्रथ के नाम से छपवाया है और यही कोई पंद्रह दिन पहले साहित्य अकादमी ने उस उपन्यास को वर्ष का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानते हुए डेढ़ लाख रुपये से पुरस्कृत किया है.

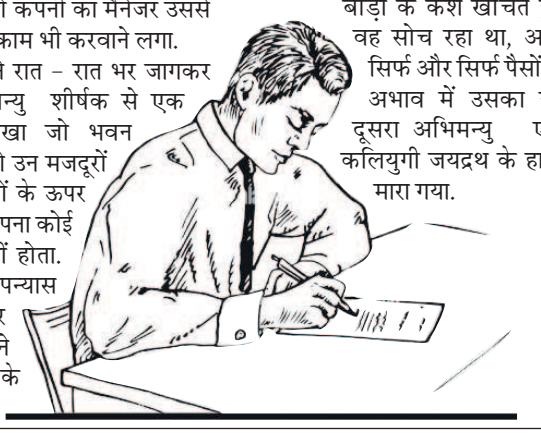

बीड़ी के कश खींचते हुए वह सोच रहा था, आज सिर्फ और सिर्फ पैसों के अभाव में उसका यह दूसरा अभिमन्यु एक कलियुगी जयद्रथ के हाथों मारा गया.

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी